शंकरदेव की जीवनी

बापचन्द्र महंत

दैत्यारी, भूषण, रामानंद द्विज और रामचरण इन चार व्यक्तियों ने शंकरदेव के जीवन चरित छंदबद्ध भाषा में लिखे। 'कथा गुरु चरित' नामक एक गद्य चरित ग्रंथ भी है, प्रचलित परंपरा के आधार पर शायद इन पुस्तकों के लिखने के बाद ही लिखा गया हो। ऐतिहासिक दृष्टि से दैत्यारी ठाकुर और भूषण द्विज के द्वारा लिखित चरित ग्रंथ अधिक प्रमाणिक माना जा सकता है। दैत्यारी ठाकुर शंकरदेव के प्रमुख शिष्य गाधवदेव के भांजे रागचरण ठाकुर का पुत्र था। शंकरदेव जी के देहांत के करीब पचास वर्ष बाद दैत्यारी ने अपना ग्रंथ लिखा। दूसरा चरितकार भूषण द्विज शंकरदेव जी के पुत्र पुरुषोत्तम ठाकुर के पुरोहित थे। इसीलिए इन दोनों चरित ग्रंथों से दो संप्रदायों का भी प्रतिनिधित्व होता है। वंश परंपरा : शंकरदेव जी जाति के कायस्थ थे। उनके पूर्व पुरुष भुञा (भूमि के अधिकारी) नाम से प्रसिद्ध छोटे छोटे राजवंश के लोग थे। 13वीं सदी में ब्रह्मपुत्र नदी के दोनों किनारे भुजाओं के छोटे राज्य थे। शासक भुञा नाम से परिचित थे। बाद में भुञा स्वतंत्र न रहकर सामंत बने। शंकरदेव के पूर्वज भुजाओं में प्रमुख होने के कारण शिरोमणि भुञा कहलाते थे। शंकरदेव ने अपने काव्य रुक्मिणी हरण में अपने वंश का परिचय इस प्रकार दिया, राज्य के राजा दुर्लभ नारायण के समय में (पश्चिमी असम में तेरहवीं सदी में कामता राज्य था) देवीदास ने बरदोबा नामक गाँव बसाया। देवीदास कामता राज दुर्लभ नारायण का प्रिय पात्र था। देवीदास का पुत्र राजधर, राजधर का पुत्र सूर्यवर, सूर्यवर का पुत्र कुसम्बर और कुसुम्बर का पुत्र शंकर हुआ। शंकरदेव के समय तक अधिकांश भुञा शक्ति के उपासक थे।

जन्म कालः शंकरदेव जी की जन्मतिथि और वर्ष के संबंध में विद्वान लोग आज तक संपूर्ण एकमत न हो सके। प्रामाणिक चरित ग्रंथों में जन्म शक और तिथि का उल्लेख नहीं है। रामानंद द्विज और रामचरण ठाकुर के नाम से लेखकों के चरित्र ग्रंथों में विभिन्न तिथियों का उल्लेख है, जो परस्पर विरुद्ध होने के कारण संपूर्ण प्रामाणिक नहीं माना जाता। रामचरण ठाकुर कृत ग्रंथ में आश्विन शुक्ल दशमी विजयादशमी में शंकरदेव का जन्म बताया गया और उसी के आधार पर आजकल गाँव में उस तिथि को ही शंकरदेव का जन्म दिवस माना जाता है। पंचांगों में भी शंकराब्द का हिसाब उसी दिन से लगाया जाता है। इसका मूल कारण यही था कि चरित ग्रंथों की प्रमाणिकता के संबंध में विचार किए बिना रामचरण के नाम पर प्रचलित चरित ग्रंथों को ही अन्यान्य चरित ग्रंथों की अपेक्षा प्रमाणिक समझा जाता था। रामानंद द्विज ने फागुन अमावस्या को शंकरदेव का जन्म बताया। जो वर्तमान अश्विन शुक्ल दशमी देव के जन्मदिवस के नाम पर प्रसिद्ध हो गया। उसका खंडन करना असंभव हो गया।

वह दिन लोक हृदय में शंकरदेव का जन्मदिन बन चुका। उस दिन को बीच में रखकर पांच-सात दिनों तक लोग गाँव- गाँव में शंकरदेव का जन्मोत्सव पालन करते हैं। नाम कीर्तन, सभा सम्मेलन, अभिनय होते हैं, पत्र-पत्रिकाओं में लेख छपते हैं, मेले लगते हैं। बंगाल के आदर्श पर असम में भी धूम धाम से दुर्गा की पूजा होती है। विजयादशमी के दिन दुर्गा का विसर्जन होता है। एक ही समय में शाक्तों का भी बड़ा उत्सव होता है। कुछ

लोगों ने शंकरदेव के जन्मदिवस को पूजा के प्रतिद्वंदी उत्सव के रूप में माना था। पर आज कल कुछ लोग दोनों उत्सवों में समान रूप से अंश ग्रहण करने लग गए।

जन्मतिथि की भांति जन्म शक का भी सवाल रहा। राम चरण के चरित ग्रंथों में 1371 शकाब्द अनुचित-सा नहीं लगता। उसी के आधार पर शंकरदेव की आयु का हिसाब लगाया गया है। घटनाक्रम की दृष्टि से वह शकाब्द अनुचित सा नहीं लगता यदि एक-आध वर्ष का आगा पीछा हो तो विशेष हानि नहीं होगी। इसीलिए 1446.ई. को सुविधा की दृष्टि से शंकरदेव के जन्म स्थान के रूप में ग्रहण करते हैं।

तीर्थ यात्रा के पूर्व : जन्म से 12 वर्ष तक शंकरदेव ने अध्ययन नहीं किया, खेल में ही बिताया। जन्म के दो एक दिन के बाद ही मातृ वियोग हुआ। दादी ने उनका पालन पोषण किया। उनका असली नाम ज्योतिष के अनुसार गंगाधर था, पर बाहर शंकर नाम प्रचलित था। चरित ग्रंथ से पता चलता है कि जब पाठशाला में जाकर शंकर ने पढ़ना शुरू किया तब उनकी प्रतिभा ने शिक्षक को बहुत प्रभावित किया। महेंद्र कंदली नामक ब्राह्मण उनके शिक्षा गुरु थे। अध्ययन के काल में ही उनकी प्रतिभा और कुछ घटनाओं से प्रभावित होकर गुरु ने ही शंकर के साथ देव शब्द भी जोड़ दिए। गुरु की आज्ञा से साथी विद्यार्थीगण शंकरदेव कहने लगे। इससे ब्राह्मण शिक्षा गुरु की उदारता, गुणग्राहिता; शंकरदेव के वंश की सामाजिक प्रतिष्ठा और व्यक्तिगत प्रतिभा का पता चलता है। कम दिनों में शंकरदेव बड़े पंडित बन चुके। अध्ययन के उपरांत उन्होंने प्राणायाम आदि योग का भी अभ्यास किया और कुछ चमत्कार भी दिखाया। उनकी साधना परंपरा में ही सामान्य भिन्नता रखकर षट्चक्र चिंतन की व्यवस्था अपनायी गई है। योगाभ्यास के कारण उनको सबल शरीर और स्वास्थ्य मिला। बरसात में ब्रह्मपुत्र नदी को तैरकर पार हुए और तैरकर ही उस तट से फिर वापस भी आए। एक बार एक सांड (जिसने लोगों को बहुत तंग किया था) को ।भी सींग से पकड़कर इस प्रकार धकेला कि वह छोड़ देने पर भय से दौड़कर भागा। ठीक समय पर उनका उपनयन आदि संस्कार हुआ और संध्या, वंदन तर्पण आदि शास्त्र विहित आचरण के साथ गृहस्थाश्रम में विवाहित जीवन यापन करने लगे। 'रामराम' नामक कुल पुरोहित शंकरदेव के साथी थे। करीब 40 वर्ष की उम्र होने के पहले ही उनको पितृ वियोग हुआ। हरि नामक के व्यक्ति से अपनी पुत्री का विवाह कर शंकरदेव करीब 40 वर्ष की आयु में 'रामराम गुरु' प्रभृति साथियों को लेकर तीर्थ भ्रमण के लिए निकले। उस समय ब्राह्मण पुरोहित को गुरु संबोधन करने का रिवाज था। इसीलिए 'रामराम गुरु' शब्द का प्रयोग होता है।

तीर्थ भ्रमण : शंकरदेव जी ने दो बार तीर्थ भ्रमण किया। पहली बार का पर्यटन 12 वर्षों में पूरा हुआ। तीर्थ यात्रा के पहले ही उन्होंने वंश परंपरा से प्राप्त शिरोमणि भुत्रा का प्रशासनीय अधिकार अपने वंश के छोटे पितामह जयंत और माधव दलै (दलपति) को सौंपा। शास्त्रों के अध्ययन में तीर्थ यात्रा के पहले ही मन लगाते थे। अध्ययन के क्षेत्र में भी रामराम गुरु शंकरदेव के सहयोगी थे। दैत्यारी ठाकुर के मतानुसार पहली बार तीर्थ भ्रमण के समय में बहुत दिन पूरी क्षेत्र में ही रहे। भूषण ने गंगा, गया और पूरी प्रभृत्ति का नाम उल्लेख किया है। राम चरण प्रवृत्ति चरित कारों के मतानुसार शंकरदेव ने रामेश्वर सेतुबंध से बद्रिका आश्रम तक दक्षिण में और उत्तर भारत के सभी प्रमुख तीर्थ क्षेत्रों की यात्रा की। शंकरदेव के आदर्श से प्रभावित मूर्ति तथा चित्र कला और संगीत तथा नाटकों की भाषा की दृष्टि से विचार किये जाएं तो ऐसा लगता है कि शंकरदेव ने उत्तर और

दक्षिण भारत के बहुत अंशों में निश्चय भ्रमण किया है क्योंकि शंकरदेव से प्रभावित मूर्ति तथा चित्रकला में दक्षिण भारतीय मूर्ति और चित्रकला का प्रभाव कुछ-न-कुछ है। संगीत (बरगीत) और नाटकों में उन्होंने जिस संमिश्र भाषा का प्रयोग किया उसमें समकालीन उत्तर भारतीय भाषाओं के शब्दों का प्रभाव बहुत स्पष्ट है।

सन् 1546 ई. के बाद शंकरदेव ने दूसरी बार तीर्थ यात्रा की। इस बार की यात्रा पहली बार की भांति बहुत लंबी नहीं थी। तब उनकी उम्र लगभग 100 वर्ष हो चुकी थी। इसीलिए पूरी क्षेत्र ही इस यात्रा का प्रमुख स्थान था। उत्तर भारत में वृंदावन तक नहीं गये। दैत्यारी और भूषण ने भी दूसरी बार की यात्रा में चैतन्यदेव से शंकरदेव की भेंट होने की बात बताई; पर उन दोनों ने विशेष आलाप आलोचना की चर्चा नहीं की।

रामानंद द्विज ने पहली बार की यात्रा में ही शंकरदेव की चैतन्य से भेंट होने की बात बताई। पर इसमें भी दोनों के बीच खास आलाप आलोचना आदि का वर्णन नहीं है। चैतन्य देव और शंकरदेव की भेंट संबंधी बातों में यह विशेष ध्यान देने योग्य तथ्य है कि यदि शंकरदेव पहली बार की यात्रा के अंतिम भाग में ही चैतन्यदेव से मिले हो तो उस समय शंकरदेव की आयु करीब 52 वर्ष और चैतन्यदेव की आयु 16 वर्ष होगी। 16 वर्ष की आयु में चैतन्यदेव । ने सन्यास ग्रहण नहीं किया था। शंकरदेव की दूसरी तीर्थ यात्रा के समय चैतन्यदेव जीवित ही नहीं थे क्योंकि साल 1533 में अर्थात शंकरदेव की यात्रा के कम-से-कम 13 वर्ष पहले ही चैतन्यदेव का देहांत हो गया था। अतः शंकरदेव और चैतन्यदेव के मिलन संबंधी बातों में कुछ भी महत्व नहीं। परवर्ती अन्यान्य कुछ चरित कारों ने शंकरदेव और चैतन्यदेव की मिलन संबंधी बातों को लेकर बहुत भ्रम फैलाया। चैतन देव के जीवन चरित्र में यह प्रसंग नहीं मिलता।

पहली बार तीर्थ भ्रमण के बाद : तीर्थ यात्रा से आकर शंकरदेव ने बरदोवा में ही धर्म प्रचार का कार्य शुरू किया। धर्म के आधार ग्रंथों में उन्होंने भागवत पुराण को ही अधिक अपनाया; उसमें शायद पाँचरात्र मत की व्यवस्थाओं का प्रभाव था। भागवत से नवधा भक्ति की ओर विशेषकर श्रवण कीर्तन को ही उन्होंने प्रधान साधन माना। दार्शनिक स्थल पर अद्वैतवाद को मानते हुए भी निर्गुण के स्तर तक पहुँचने के लिए सगुण भगवान की लीला का आश्रय ग्रहण करना उन्होंने अनिवार्य माना है। इसीलिए श्रीकृष्ण की लीला का श्रवण कीर्तन और श्रीकृष्ण में आप समर्पण या संग्रहण ही धर्म के प्रमुख अंग बने।

बरदोवा में कछारी नामक जनजाति के लोग बार-बार भुत्रओं को तंग करते थे। इसीलिए शंकरदेव ने पहली बार तीर्थ धवन के बाद बरदोवा छोड़कर ब्रह्मपुत्र के उत्तर की दिशा में गामों नामक स्थान में रहना निश्चित किया, किंतु वहाँ भी भोटो के (भूटान के लोग) हमले के कारण शांति से रहना असंभव था। इसीलिए अपने लोगों के साथ हुए, राज्य के भीतर धुवाहाट नामक एक स्थान पर (वर्तमान शिवसागर जिले के माजुली टापू में) रहने लगे। कुछ वर्षों के बाद अहोम राज्य पर कोच राजा नर नारायण ने आक्रमण किया। बंगाल के कोच बिहार से असम के गुवाहाटी तक प्रदेश उस समय कोच राजा के शासनाधीन था।

अहोमों को कोचों से लड़ने के लिए हाथी की आवश्यकता हुई और हाथी पकड़ने के काम में अहोम शासक ने भुत्रओं को भी लगाया। जंगली हाथी भुजाओं की तरफ से ही भाग निकले। इसीलिए शंकरदेव के दामाद हरि को प्राण दंड मिला। शंकरदेव के प्रमुख शिष्य माधवदेव को पकड़ा गया, परंतु अविवाहित अकेला आदमी होने के

कारण प्राण दंड से उनको छुटकारा मिला। इस घटना के बाद आंखों में राज्य का वातावरण अपने लिए प्रतिकूल समझकर शंकरदेव कोच राज्य के भीतर बरपेटा के पास आकर बस गये। आज भी बरपेटा के पास पाटवांउसी नामक स्थान पर उनके प्राचीन सत्र और उनके अन्य एक ब्राह्मण सिर्फ दामोदरदेव के पुत्र का सुंदर वातावरण नजर आता है। शंकरदेव जी पाटवांउसी से कोच राज्य की राजधानी कोच बिहार जाते समय दामोदरदेव को पाटवांउसी में प्रतिष्ठित कर गए थे।

कोच शासकों के संपर्क में : पुरानी व्यवस्था जिनके

हाथों में होती है वह नई व्यवस्था के विरोधी बनते हैं, यह स्वाभाविक बात है। शंकरदेव के समय में विभिन्न देव- देवियों की जो पूजा व्यवस्था ब्राह्मणों के हाथों में थी उस पर शंकरदेव के द्वारा प्रचारित भागवत धर्म के कारण कुछ आघात पहुँचा। शंकरदेव ने सब काम-भाव से विभिन्न देवी-देवताओं की उपासना का मार्ग त्याग कर केवल परम सत्ता नारायण या महापुरुष की (त्रिगुणत्मिका, प्रकृति के अतीत चेतन पुरुष की) उपासना का मार्ग पकड़ा और शिष्यों को भी वही मार्ग दिखाया। उनकी उपासना मार्ग में युगल रूप में भी शक्ति की उपासना का स्थान नहीं था। नारायण के साथ लक्ष्मी, राम के साथ सीता और कृष्ण के साथ रुक्मिणी या राधा को भी स्थान नहीं मिला। इस प्रकार केवल महापुरुष की ही उपासना की जाती है शक्ति की उपासना नहीं होती। इसलिए उनके संप्रदाय का नाम भी 'महापुरुषिया' हुआ। परवर्ती शिष्यों ने अपने गुरु को आराध्य देव से अभिन्न मानकर महापुरुष माना और महापुरुष शंकरदेव की भांति उनके शिष्य परंपरा में महापुरुष माधवदेव, महापुरुष दामोदरदेव और महापुरुष हरिदेव प्रभृत्ति परवर्ती गुरुओं के नाम के साथ महापुरुष शब्द जोड़ा गया।

इस महापुरुषीया आदर्श के प्रचार से सकाम देव-देवियों की पूजा से जीविका निर्वाह करने वाले कुछ ब्राह्मणों के स्वार्थ में बाधा पहुँची। अतः कुछ साधारण ब्राह्मणों ने (विद्वान ब्राह्मणों ने नहीं) शंकरदेव का विरोधाचरण किया। सभी भक्तों को तंग करते थे गालियां देते थे माला छीन लेते थे या राजा के पास जाकर शिकायत करते थे। अहोम राज्य में रहते समय भी ऐसा हुआ पैर शंकरदेव को दबाने में समर्थ ना हो सके। कुछ राज्य में भी ब्राह्मणों का यह विरोधाचरण प्रारंभ हुआ। ब्राह्मणों ने कोच राजा नर नारायण के पास शिकायत की कि शंकरदेव वेदाचार्य और देव- देवियों की पूजा के विरोध में प्रचार कर देश में भ्रष्टाचार फैला रहे हैं। राजा ने ऐसी शिकायत पाकर शंकरदेव को पकड़ने के लिए आदमी भेजा; किंतु उन आदमियों के द्वारा शंकरदेव पकड़े नहीं गए। नारायण ठाकुर और गोकुल चांद नामक दो शिशु को पकड़कर ले गए, किंतु बहुत सता कर भी शंकरदेव के धर्म में भ्रष्टाचार को प्रमाणित करने योग्य बातें दोनों शिष्यों के मुख से निकाल सके।

महाराज नर नारायण के भाई चिलाराय या शुक्लध्वज सेनापति भी थे और सहायक शासक भी थे। चिलाराय देवान नाम से वे परिचित थे। पुरानी पुस्तकों में शुक्ल ध्वज नृपति शब्द का भी प्रयोग मिलता है। चिलाराय ने शंकरदेव के चचेरे भाई रामराम की बेटी भुवनेश्वरी से विवाह किया था। अपनी पत्नी के जरिए चिलाराय ने

शंकरदेव के महत्व को कुछ समझा था। शंकरदेव को पकड़ने के लिए जब राजा के आदमी आए थे, उस समय चिलाराय ने शंकरदेव को अपने जिम्मे पर छुपा रखा।

समकालीन गूवा शासकों के विचारालय को 'कारखाना' कहा जाता था। चिला राय ने राज्य के एक अंश में शंकरदेव को कारखाने का गोमास्ता या दलै भी बनाया था। पर शंकरदेव इस कार्य में बहुत दिन तक न रहे। बाद में जब महाराज नरनारायण को पता चला कि शंकरदेव को अपने भाई चिलाराय ने ही अपने जिम्मे पर रखा तब शंकरदेव के प्रति राजा के मन में श्रद्धा की भावना हुई और राजसभा में बुलाया राजसभा में जाने पर शंकरदेव के पंडित और आचरण से प्रभावित होकर नर नारायण ने उनका बहुत आदर करना शुरू किया, शंकरदेव के विरोधियों का मुँह बंद हुआ।

नर नारायण की सभा में जाने के बाद फिर एक बार शंकरदेव जी बरपेटा आए परु, बहुत दिन न रहे। पाटवांउसी में दामोदरदेव को अपना स्थान दे दिया और संगठन कार्य के उत्तराधिकारी के रूप में महादेव को चुना फिर धर्म प्रचार के लिए भी आज्ञा दी। उसके बाद दूसरी बार शंकरदेव जी कोचबिहार चले गए और आजकल जहाँ मधुपुर सत्र है

उसी स्थान पर रहने लगे। नर नारायण की सभा के बड़े-बड़े विद्वान ब्राह्मण भी शंकरदेव के आदर्श को अपनाने लगे। साल 1568 के भादो महीने की शुक्ल द्वितीया तिथि में कोच बिहार में ही शंकरदेव का देहांत हुआ। रामचरण ठाकुर के नाम से प्रचलित चरित-ग्रंथ में है कि महाराज नर नारायण ने शंकरदेव के पास शरण ग्रहण करना चाहा किंतु शंकरदेव जी राजा, ब्राह्मण और स्त्रियों के गुरु नहीं बनते थे। इसीलिए उन्होंने राजा के गुरु न बनने की इच्छा से योग के द्वारा प्राण त्याग दिया। बहुत से लोग रामचरण के चरित की इस बात को दोहराते जाते हैं, परंतु महापुरुष या साधना मार्ग और परंपरा के अनुसार यह बात सच्ची प्रमाणित नहीं होती। दैत्यारी ठाकुर, भूषण द्विज और रामानंद द्विज ने भी राजा से छुटकारा पाने के लिए प्राण त्याग करने की बात नहीं बताई। दैत्यारी ने लिखा है कि फोड़ा निकला और ज्वर हुआ था। भूषण ने उस समय का विशेष वर्णन नहीं किया।

शंकरदेव के प्रमुख शिष्य और उनकी परंपरा : शंकरदेव जी धुँवाहाट जिस समय थे, उसी समय माधव नामक एक कायस्थ शाक्त व्यक्ति उनसे बहस करने आए थे। शास्त्र ज्ञान में वह पटु होने पर भी वह शंकरदेव के सामने ठहर ना सके। तर्क में परास्त होकर उन्होंने तत्काल ही शंकरदेव का शिष्यत्व स्वीकार किया। शरण ग्रहण के बाद माधव के जीवन की दिशा बिल्कुल बदल गई। होने वाला विवाह बंद कर दिया और अपने ही गुरु की सेवा में वे जीवन बिताने लगे। साहित्य और कला के क्षेत्र में भी उन्होंने अपने गुरु के साथ-साथ कदम उठाएं। सेवा और प्रतिभा के कारण ही वे गुरु के उत्तराधिकारी बन सके। वह बाद में माधव नाम से प्रसिद्ध हुए। पाटवांउसी में रहते समय दामोदर और हरी नामक दो ब्राह्मण शंकरदेव के शिष्य बने थे। शंकरदेव के बाद पाठवांउसी में

दामोदर और पाटवांउसी से 810 मील की दूरी पर 'मानेरी' नामक स्थान में हरिदेव ने धर्म प्रचार किया। बाद में दामोदरदेव और हरिदेव की परंपरा में शंकरदेव को अपने गुरु के रूप में दिखाने की वैसी व्यवस्था नहीं रही जैसी व्यवस्था माधवदेव की परंपरा में रही। बाद के कुछ लोगों ने दामोदरदेव और हरिदेव की परंपरा को शंकरदेव की परंपरा से पृथक रूप में प्रतिपन्न करने के लिए भी कोशिश की। इस क्षेत्र में बंगाल के चैतन्य मत के समर्थकों का भी कुछ प्रभाव रहा। इतना होते हुए भी वैष्णव आंदोलन में शंकरदेव का नेतृत्व और हरिदेव तथा दामोदरदेव के ऊपर भी शंकरदेव का प्रभाव निर्विवाद स्वीकृत हुआ।

माधवदेव की परंपरा के लोगों ने अपने कार्य क्षेत्र को पश्चिमी असम के उसी क्षेत्र में सीमित नहीं रखा, जिस क्षेत्र में शंकरदेव, माधवदेव, दामोदरदेव, हरिदेव और अन्यान्य बहुत उनके अनुयायी गुरुओं ने धर्म प्रचार का कार्य किया था। वंशी गोपाल नामक एक ब्राह्मण भक्त दामोदरदेव और माधवदेव दोनों की आज्ञा से पूर्वी असम में धर्म प्रचार के लिए गए। उनके साथ और कुछ बाद में माधवदेव की आज्ञा से यदुमनी और दामोदरदेव की आज्ञा से वनमाली नामक दो ब्राह्मण भक्त चले। इनके अतिरिक्त माधवदेव की परंपरा में श्री शंकरदेव के बड़े पुत्र पुरुषोत्तम ठाकुर कनिष्ठ पुत्र चतुर्भुज ठाकुर, चतुर्भुज ठाकुर की पत्नी कनकलता आई तथा भवानीपुर के गोपाल आता ने 12-12 प्रचारक गुरु भेजें। उन गुरुओं में ब्राह्मण और कायस्थ गुरुओं की संख्या करीब-करीब समान थी। उन ब्राह्मण और कायस्थ गुरुओं ने पूर्वी असम के विभिन्न स्थानों में 'सत्र' 'प्रचार का केंद्र' की स्थापना की। उन्हीं की परंपरा आज तक चल रही है। माधवदेव की आज्ञा से पद्मआता नामक और एक कायस्थ गुरु पूर्वी असम में प्रचार के लिए गए थे। उनकी परंपरा में सत्रों की संख्या कम है।

व्यक्तित्व की झलक असम में ऐसे किसी दूसरे व्यक्ति का जन्म अब तक नहीं हुआ जो शंकरदेव के समान जनमानस को प्रभावित कर सके। बड़े पंडितों से निरक्षर जनता तक शंकरदेव का प्रभाव किसी-न-किसी रूप में है। सत्र व्यवस्था ने समाज को एक स्वावलंबी

तथा गण तांत्रिक आदर्श दिया। सत्र में देवालय के साथ पुस्तकालय, विद्यालय और चिकित्सालय की भी व्यवस्था हुई। सत्र में देवालय को कीर्तन घर या नाम घर कहा जाता है। सत्र के आदर्श पर ही गाँव-गाँव में नाम घर बने, जो संगठित समाज के कार्यालय के रूप में कार्य करने लगे। किस व्यक्तित्व की साधना के द्वारा शंकरदेव को इस क्षेत्र में इतनी सफलता मिली यह बात विचार्य है। साधारण दृष्टि से देखा जाए तो उनमें निम्नोक्त व्यक्तिगत विशेषता दिखाई देती है।

योग साधना से प्राप्त अत्यंत दृढ़ स्वास्थ्य और करीब 116 वर्षों का दीर्घ जीवन। सत्ता और अर्थ का त्याग, सामंत शासकों के प्रमुख शिरोमणि भुंजा का पद छोड़ा, धर्म के साथ कला को प्रचार में और समाज को नई दिशा दिखाने में अपने जीवन को सौंपा। त्याग का अर्थ संन्यास या संसार से मुँह मोड़ना नहीं, पहली बार फिर से

वापस आने के बाद शंकरदेव ने लोगों के आग्रह पर दूसरी शादी भी की। दूसरी पत्नी से उनके तीन बेटे। बड़े बेटे का नाम रामानंद ठाकुर था। रामानंद ठाकुर का बेटा पुरुषोत्तम ठाकुर परवर्ती प्रचारकों में विशिष्ट स्थान रखते थे। दूसरा बेटा कमल लोचन कुम उम्र में ही मरा। तीसरा बेटा हरिचरण का पुत्र चतुर्भुज ठाकुर पुरुषोत्तम ठाकुर के बाद प्रचारक बने। शंकरदेव ने त्रयी की व्याख्या के रूप में या किसी दार्शनिक मतवाद के नाम पर अपने धर्म के आचरण और आदर्श को बांधने का प्रयास नहीं किया। भागवत पुराण की दार्शनिक दृष्टि को ही उन्होंने अपनाया। भागवत में सांख्य और वेदांत का समन्वय हुआ, इसीलिए उन्होंने अपने साधन मार्ग की व्यवस्थाएं द्वैत भावना से अद्वैत भावना की ओर आगे बढ़ने के लिए अनुकूल आचरणों के रूप में दी। भक्ति के लिए कलात्मक साधनों को इसीलिए अपनाया गया कि लोगों को कला में दर्शन भी मिलता है, किंतु साधारण लोग कला दर्शन के रूप में ग्रहण नहीं करते। शंकरदेव ने अपने साहित्य में दर्शन को छिपाकर रखा और समकालीन लोक रुचि की ओर ध्यान रखकर लोक भाषा में ही इस प्रकार साहित्य का निर्माण किया कि असमिया साहित्य के इतिहास का विचार करते समय प्राक् शंकरी युग और उत्तरी शंकरी युग के नाम से करना पड़ता है। उनके साहित्य में कला का आचरण पक्ष भी था, इसीलिए शंकरदेव के आदर्श में लिखा हुआ दूसरे लेखकों का वैष्णव साहित्य भी आधुनिक असमिया साहित्य की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय रहा।

साभार

राष्ट्रवाणी, सं: गो.प. नेने। अंक 3, वर्ष 25, सितंबर 1971

(महापुरुष शंकरदेव विशेषांक, प्रथम खंड)